ISSN (P) : 0976-7444
(e) : 2395-7247

राजस्थान की लोक अलंकरण कलाएँ

15

प्रेरणा चौधरी*

लोक कलाओं की सहज अभिव्यक्ति भी कला को एक मूल प्रवृत्ति सिद्ध करती है फिर भी इससे यह प्रमाणित हो गया है कि किसी संगठित सामाजिक व्यवस्था में ही कला का विकास हो सकता है लोक कलाओ के भी विशेष केन्द्र होते है जहाँ से वे प्रेरणा लेती है ऐसे केन्द्रो से दूर एकान्त क्षेत्रों में रहने वाले भी सहज रूप से कलाकृतियों की रचना करते हैं। यह सहजता भी किसी समूह का सामाजिक गुण है क्योंकि ऐसी कला में अधिकांशतः सामूहिक भावनाओं की अभिव्यक्ति अंकन–पद्धति के द्वारा की जाती है।

लोक कला का अध्ययन 19वी0 शताब्दी से ही आरम्भ हुआ था इसके पूर्व इस कला की और किसी का ध्यान भी नही गया था जबसे इसका अध्ययन आरम्भ हुआ है, इसकी सीमाओं और परिभाषाओं के सम्बन्ध में विद्वानों में यथेष्ट मतभेद रहा है फिर भी इतना स्पष्ट है कि लोक कला मानव सभ्यता के विकास के इतिहास में एक ओर कला और दूसरी ओर सुसंस्कृत कला के मध्य स्थित रही है। लोक कला की उत्पत्ति एवं इतिहास के सम्बन्ध में भी मतैक्य नही है तथापि यह कहा जा सकता है कि यह एक पृथक वातावरण में प्राचीन परम्पराओं को अक्षुण रखने वाली कला है।

राजस्थान उसकी लोक अलंकरण कलाएँ

राजस्थान लोक कला की खान है। यहां के जन जीवन में लोक कला विविध रंगों और रूपों में उभरी है। लोक कला के विकास में और उसे प्राणवान बनाए रखने में यहाँ की कुशल महिलाओं का पर्याप्त योगदान रहा है। लोक जीवन के विविध अंगों को यहां की नारियों ने कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। आज भी नारियां इन आकर्षक कलाओं को, जीवित रखे हुए हैं।

समाज की धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों को सहज कलात्मक अभिव्यक्ति देने वाली राजस्थान लोक कला का क्षेत्र यद्यपि बहुत विकसित है तथापि हम इसके दर्शन मांडना, मेहन्दी–महावर, तथा लोक अलंकरण के कुछ अन्य रूपों में ही करते हैं। ये अलंकरण लोक रंजन और लोक सौन्दर्य की सहज अभिव्यक्तियों हैं जो राजस्थान के अनेक अंचलों का सही प्रतिनिधित्व करती हैं। हर्षपूर्ण त्यौहार और सुचिपूर्ण मधुर प्रथाओं के रूप में मनाए जाने तथा विकास पाने वाली ये लोक कलाएं इतनी रोचक और संगीतमय होती हैं कि राजस्थान महिलाएं अपनी भावनाओं की डोर में उमंगों के फूल पिरोकर इन्हें भेंट करती है और तोश पाती है।

*प्रवक्ता, चित्रकला विभाग, कनोहर लाल स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, मेरठ

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

मांडना चित्रांकन

राजस्थान लोक अलंकरण का सबसे अधिक विकसित और प्रचलित रूप है मांडना। राजस्थानी मांडना महाराष्ट्र की रांगोली और बंगाल के अल्पना से केवल आंचलिक रूप से ही भिन्न है। साधन और श्रम की दृष्टि से ये कलाएं लगभग एक ही हैं। लोकरंजन और भावाभिव्यक्ति का भी इनमें कोई विशेष अन्तर नहीं हैं।

मांडना की अलंकृत परिकल्पनाओं का प्रचलन यहाँ प्राचीन काल से ही रहा है। इसके उद्‌भव एवं विकास की यद्यपि कोई निश्चित तिथि बना सकना कठिन है तथापि यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि जन जीवन में कलात्मक अभिरुचि उत्पन्न होने के साथ–साथ ही मांडना अलंकरण की प्रथा भी चल निकली। मांडना शब्द का संज्ञा और क्रिया दोनों ही रूपों में प्रयोग किया जाता है। मांडना संज्ञा 'डिजाइन' या परिकल्पना को व्यक्त करती है और मांडना क्रिया का अर्थ है चित्रित करना अथवा बनाना। वे समस्त आकृतियां जो दीवार अथवा जमीन पर खड़िया गेरू, हिरमिच, पेवड़ी, काजल एवं अन्य देशी रंगों के माध्यम से बनाई जाती है, मांडना कहलाती हैं। ये आकृतियां हाथ की अंगुलियों अथवा कूची से बनाई जाती है। रंखाएं, रंग–टीकियाँ (टपकियाँ) और गांठें इसके चित्रण के प्रमुख माध्यम होते हैं।

होली, दीवाली, दशहरा अथवा अन्य त्यौहारों पर जब समस्त घरों की लीपा–पोती और सजावट की जाती है तब यहां की महिलाएं देहरी, आंगन, दीवार या आलों में माडंना की सुन्दर आकृतियां बनाती हैं। ये मांडने विविध रंगों और अलंकृत रूपों में शोभित होते हैं।

राजस्थान की नारियां गृहस्थ जीवन में व्यक्त रहकर भी कलात्मक मांडनों की रचना करती हैं जिनमें उनकी पवित्रता, मंगल–कामना, सौंदर्यानुभूति तथा कला–साधना की विशिष्ट छाप होती है। राजस्थानी लोक मानस की सहज झलक हमें इन मांडनों में देखने को मिलती है।

मांडनों में सरल और जटिल दोनों ही प्रकार की रेखाओं का प्रयोग होता है। दरअसल इन आकृतियों में प्रयोग किये जाने वाले रंग और उनकी रचना हेतु बनाई जाने वाली रेखाएं नारी विशेश की मनः स्थिति का दर्पण होती है ; गहरे रंग और उलझी हुए रेखाएं, हल्के रंग सरल रेखाएं सभी उनमें मौजद होती हैं। घरों की सुन्दरता में चार चान्द लगाने वाले ये माडनें शुभ–शकुन के प्रतीत माने जाते हैं। इनमें गृहस्थ जीवन के सुख और समृद्धि की मंगलकारी भावना अन्तर्निहित होती है।

मांडना बनाने की कला यहां की कुमारियों की अपनी घर की चतुर एवं अधेड़ महिलाओं से विरासत में मिली होती है। इसके लिए कन्याओं या नारियों को किसी स्कूल में शिक्षा पाने की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि घर में ही इनका चित्रण सीखकर वे इस अपने बपने ढ़ंग से इनको चित्रित करती हैं। विवाह अथवा अन्य शुभ अवसरों पर यहां की चतुर सुहागनों द्वारा 'कलश' एवं माँडने बनावाये जाते हैं और उनहें नारियल तथा नकद दक्षिणा दी जाती है।

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

रंग–बिरंगा उत्सव सांझी

संझ्या, संज्ञा या सांझी को राजस्थानी कुमारियाँ आश्विन माह के पितृपक्ष की प्रतिपदा से दशहरे तक त्यौहार के रूप में मनाती हैं। साथ ही सांझी की कलात्मक आकृतियों का चित्रण करती हैं। सांझी, राजस्थानी कुमारियों का कलापूर्ण रंग–बिरंगा उत्सव भी माना जाता है। पितृपक्ष के पूरे पन्द्रह दिनो तक कन्याएं विविध प्रकार की लोकरंजित सांझियाँ बनाती हैं। सांझी के चित्रण की एक विशेष बात यह होती है कि इसे प्रतिदिन नये रूप में चित्रित किया जाता है। यह यहां की कुंवारी कन्याओं की कलात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति मात्र ही नहीं है अपितु इसमें प्राचीन, पौराणिक, पाम्परिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं प्रचलित समामजिक कथाओं का आलेखन किया जाता है। कृष्णलीला, कृष्ण–जन्म, कंस–वध, राम–चर्चा तथा हनुमान विजय (और अब कहीं–कहीं गांधी जीवन भी) आदि इनके प्रमुख विषय हैं जिनका अंकन अत्यन्त सुघड़ता से किया जाता है। शहरी और ग्रामीण संझयाओं में यद्यपि थोड़ा बहुत अन्तर होता है, तथापि विषय वही परम्रागत सूरज, चाँद, मोर, बीजणी, तिबारी, जनेऊ छाबड़ी, पंखा, चौपड़ सास–बहू आदि ही होते हैं।

प्रतिपदा के दिन भली–भाँति लीपे–पुते स्थान पर कन्याएं सर्वप्रथम गोबर की गोहली देकर एक कापड़ (त्रिकोण) बनाती हैं। उसके अन्दर एक चांद या गोत्या बनाकर, अंगूठे की सहायता से गोबर को दीवार पर चिपकाकर निर्मित की जाने वाली इन सांझियों के विषय दुसरे ही दिन अर्थात दूज से ही बदलने शुरू हो जाते हैं। अंकन भी नित्य नया और आकर्षक होता हैं तिथियों के बढ़ने के अनुसार ही सांझी की बारात बढ़ती है। दूज को 'पाँच पचेरा' बनता है। तीज को 'सूरज', चौथ को 'वन्दनवार' छठ को 'कदली' सप्तमी', को 'पंखा', दशमी को मारे', ग्यारस को 'छबड़ी', बारस को 'बीजणी', जेरस को 'जनेऊ' और चतुर्दशी को कुमारी संझाबाई की बारात रवाना हो जाती है। प्रथम दिवस को बनाई गई आकृति (कापड़ और चान्द्या) प्रत्येक चित्र के साथ बनाई जाती है। अन्तिम दिन सांझी को पाड़कर राजस्थानी कन्याएं गीत गाती हुई उसे जल में विसर्जित कर देती हैं।

सांझी के चित्रण में गोबर के अतिरिक्त मिट्टी, चून, पुष्प, पीतरा–पन्नी, हल्दी, कुंकुम, कौड़ी एवं मिर्च आदि का प्रयोग करके उनहें अलंकृत किया जाता है। सांझी कर बारात में जो आकृतियां बनाई जाती हैं वे अत्यन्त आकर्षक और लोककला की विशिष्ट तर्ज पर होती हैं। इन आकृतियों में काच, कांगसी, नाना आभूषण एवं सखी–सहेलियों के चित्र भी दिखायें जाते है। जो कन्याओं के अखण्ड सौभाग्य की निशानी मानी जाती है।

सांझी और लोकदेवी गौरी

सांझी की प्रतिष्ठा राजस्थान में लोकदेवी गौरी (पार्वती) के रूप में भी है। इसलिए यहाँ की कन्याएं प्रातः काल दूध और पुष्प से तथा सायंकाल भी तथा शक्कर मिले आटे को छिड़कर उसकी पूजा करती हैं। झीलों का नगर होने के कारण यहां विशेष प्रकार से पानी की सांझी भी बानाई जाती है। उदयपुर का मछन्दरनाथ मन्दिर अपनी सांझियों के कारण इतना प्रसिद्ध है कि उसका नाम ही 'संझ्या मन्दिर' पड़ गया है।

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

सांझी निर्मित करती, उसकी पुजा करती, कूलर छांटती और अंकल लाती हुई राजस्थानी कन्याएं कुछ गीत गुनगुनाती हुई देखी जाती हैं। विविध रागों और तालों में गाये जाने वाले इन गीतों में से एक गीत की कुछ पंक्तियां इस प्रकार है :

मोर पछेटा सात्या सजांवा
मोत्यां मांग पुरावां
कोट बणावां, कलस सजावां
सांझ्या नें परणावां
आरती गावां, लुरलुर जावां
मंगलमोद मनावां।

मेहन्दी महावर

मेहन्दी या महावर रचाना एक ओर नारी के सौन्दर्य प्रसाधनों में गिना जाता है तो दूसरी ओर यह परम्परा से चली आ रही मांगलिक लोककला भी है। राजस्थान में इसे सुहाना का शुभ चिह्न माना जाता है। कन्याएँ तथा वधुएं अनेक मांगलिक अवसरों पर मेहन्दी एवं महावर अनुरागपूर्वक रचाती हैं। सौभाग्यसूचक मेहन्दी के मांडने राजस्थान की महिलाएं उत्साह और हर्ष के साथ अंकित करती है। विवाह के अवसर पर या अन्य खुशी के पर्व में महावर का रंग उनके हाथ–पांवो की शोभा बढ़ाता है। मेहन्दी रचाना नारी के सोलह श्रृंगार का एक विशिष्ट अंग माना गया है। राजस्थान में इसका प्रचलन अति प्राचीनकाल से है। प्रारम्भ में जब मेहन्दी उपलब्ध नही थी तब नारियां लाख को उबालकर उसके रस से पांवो और हाथों में कलात्मक बेलबूटों का अंकन लिया करती थीं। यह रंग अत्यन्त गहरा और सुन्दर होता था। कालान्तर में लाख क रस (लाक्षारस) के स्थान पर मेहनदी का प्रयोग किया जाने लगा।

मेहन्दी एक बारहमासी झाड़ होता है जिसकी पत्तियों का छाया में सुखाकर पीसा जाता है और पानी के मिश्रण से लेही के समान बना कर हाथों और पांवों में सुहागन महिलाओं तथा कुंवारी कन्याओं द्वारा रचाया जाता है।

राजस्थान में मेहन्दी का प्रचलन खूब है। यहां की वधुएं एवं कन्याएं शादी विवाह पुत्र जन्मोत्सव, तीज, त्यौहार, श्रावणी गणगौर, होली, दिवाली तथा अन्य सांस्कृतिक तथा सामाजिक पवों मे दियासलाई की काड़ी (तीली) अथवा तूलिका के माध्यम से महेन्दी रचाती है। यहां के ग्रामीण अंचल में तो सुहागिनें और कुंवारियां साधारण दिनों मे भी अपने शारीरिक सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिये पांवों मे महावर और हाथों में मेहन्दी की आकर्षक डिजाइनें (परिकल्पनायें) बनाती रहती है।

जयपुर की मेहन्दी राजस्थान भर में प्रसिद्ध है। राजस्थान के प्रत्येक अंचल में जयपुर की मेहन्दी अधिक मात्रा में काम में लायी जाती है। मेहन्दी का रंग पक्का और आर्कषक ढ़ंग से निखरे इसके लिए यहां की महिलाएं महेन्दी को विशेष प्रकार से तैयार करती है। पिसी हुई मेहन्दी को कपड़े से छानकर उसे एक चीनी के पात्र मे निश्चित अनुपात में पानी में मिलाकर भिगो

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

दिया जाता है। कुछ घन्टों बाद उसमें थोड़ी सी मात्रा में मेहन्दी तेल (जो पंसारी के यहां मिला जाता है) मिलाया जाता है। मेहन्दी के जमाव के लिए महिलाएं हाथ, पांवों मे चीनी के पानी और नीबूं के रस का फोआ भी लगाती हैं। मेहन्दी–राजस्थान लोक अलंकरण की एक महत्वपूर्ण रंग रचना हैं।

थापा की गौरवशाली परम्परा

राजस्थान के अनेक अंचलों में विवाह–शादी के अवसर पर अबीर गुलात उड़ाई जाती है और सगे लोग (वर एवं वधू पक्ष के लोग) एक दूसरे से होली खेलते हैं। आपस में वस्त्रों पर अनेक रंग डालते हैं और पीछ पर पूरे हाथ की छाप लगाते हैं। यह छाप 'थापा' कहलाती है। केसरिया, कुसुम्बी रंग अथवा कुंकुम से बनाये गये हथेली और अंगुलियों के थापे का यहां बड़ा महत्व है। होली, दीवाली, अक्षय तृतीय एवं गणगौर के त्यौहारों पर भी ये मांगलिक थापे दिये जाते हैं। राजस्थानी जन–जीवन पर यह आंचलिक छाप अपना नया व्यापार शुरू करने वाले व्यापारियों की स्थापना–पूजा में व गणगौर पूजने वाली कन्याओं द्वारा पीपल के पेड़ तेल भी देखी जा सकती है।

हाथ के थापे कहीं–कहीं राजस्थान के प्राचीन दुर्गो में देखने को मिलने हैं। उत्तर भारत में जिस दशहरे के थापे का प्रचलन है, वह इस आंचलित राजस्थानी थापे से भिन्न है। दशहरे का थापा भीगे हुए चावलों को पीसकर बनाये गये लेप से अंकित किया जाता है। इस लेप में हींगलू का मिश्रण होता है। यह त्रिकोण और चौपड़ की शक्ल में बनाया जाता है। बन जाने पर परिवार के लोग केसर, कुंकुम, अक्षत, पीले फूल, दीपक और मिठाइयां रखकर दशहरे के दिन इसकी पूजा किया करते है। राजस्थान में दशहरे के इस थापे का प्रचलन नहीं है। दीवारों पर लगाये जाने वाले राजस्थानी थापे के साथ स्वस्तिक अंकित करने की भी प्रथा है।

अंग चित्रांकन की विशिष्ट कलाः गोदना

गोदन राजस्थानी लोक अलंकरण की एक विशिष्ट प्रथा है। यद्यपि यह प्रथा यहां अत्यन्त प्राचीन समय से है तथापि गोदने के चिह यहां ग्रामीण क्षेत्रों से आने वाली महिलाओं व पिछड़ी हुई जातियों की वधुओं के अंगों पर आज भी देखे जा सकता हैं। राजस्थान के कुछ खास क्षेत्रों मे तो प्रत्येक महिलाओं के लिए यह अंकन अनिवार्य सा माना जाता है। वहां बिना गुदा हुआ नारी का शरीर शुभ नहीं कहा जाता और लज्जा का विषय समझा जाता है। किन्तु यह भावना पिछड़े हुए क्षेत्रों तक ही सीमित है।

गोदाना मात्र महिलाओं में ही प्रचालित नहीं, अपितु पुरूषों मे भी इसका प्रचलन है। बीन बजाकर सांप का तमाशा दिखाने वाले, नट और गाड़िया लुहार आदि जातियों के पुरूषों के अंगों में भी गोदने के चिन्ह अंकित होते है। पिछड़े और अशिक्षित जातियों के लोगों की गोदने के विषय में अनेक शुभ धाराणएं एवं मान्यताएं हैं। गोदना ललाट, हाथ, पांव, होंठ, छाती एवं जंघा आदि अंगों पर होता है, किन्तु हाथ की कलाई, पांव ही पगथली, छाती और ललाट पर भी गोदने की विविध आकृतियां विशेष रूप से अंकित की जाती है।

© 2015 *Journal Anu Books.* Authors are responsible for any plagiarism issues.

Artistic Narration : A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art ISSN (P) : 0976-7444
Vol. VI 2015 (e) : 2395-7247

गोदना–अलंकरण के अन्तर्गत अपने इष्ट का चित्र, घड़ी, बेलबूंटे, स्वयं का नाम और बिच्छु आदि का चित्र हाथ की कलाई, पर बिन्दियां और रेखायें ललाट पर तथा सांतिया और टपकियां पांवो में बनाई जाती हैं। गोदने की क्रिया अन्य लोक अलंकरणों से अधिक स्थाई होती है। गोदने के साथ प्रायः शरीर से खून निकल आता है। अंगों मे सूई अथवा बबूल के कांटे से आकृति बनाने के बाद उस पर कोयला और खेजड़े (एक प्रकार का सूखा पेड़) के पत्तों का कला पाउडर डाल दिया जाता है। यह पाउडर खून भी सोख लेता है और अंग में एक स्थाई निशान बना देता है। सूखने के बाद इसमें हरी झांई उभर आती है।

गोदने की प्रथा सुदूर अरब, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका व पोलीनेशिया आदि दशों में भी विद्यमान है। पिछड़े हुए अंचलों और 'रेड इंडियन' कहलाते वाली जाति के लोगों के अंगों पर प्रायः गोदने के निशान पाये जाते है।

आजकल गोदने के लिये कुछ मशीनों को प्रयोग भी किया जाने लगा है जो देशी विधि से अधिक उपयुक्त हैं। किन्तु लोक अंलकरण की जितनी स्वाभाविका आकृतियां मूल विधि द्वारा अंकित चित्रांकनों में देखने को मिलती है वैसी मशीन द्वारा अंकित विधि में नही। गोदना राजस्थान की पिछड़ी जातियों में प्रचालित महिलाओं एवं पुरूषों का विशिष्ट लोक श्रृंगार है जो समय के अन्तराल के साथ लुप्त प्रायः होता जा रहा है।

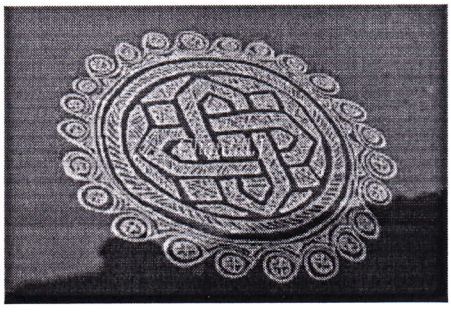

माडना जमीन पर

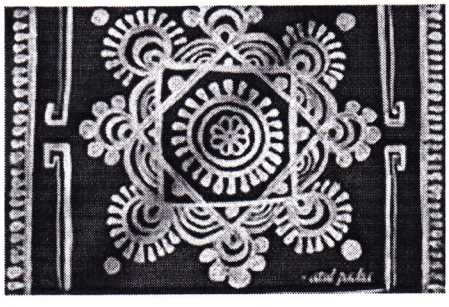

माडना दिवार पर

साझी

महावर

© 2015 Journal Anu Books. Authors are responsible for any plagiarism issues.